ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 311-315

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में समाजवाद

आयुष बघेल

शोध अध्येता– यू0जी0सी0 नेट, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ0प्र0), भारत

Received-20.12.2022, Revised-24.12.2022, Accepted-29.12.2022 E-mail: baghel.ayush92@gmail.com

सारांशः ***हिन्दी नाट्य–साहित्य के क्षेत्र में प्रसाद जी का अभ्युदय एक नये युग का सूत्रपात करता है। पारसी रंगमंच के शिल्पविधान तथा पौराणीक इतिवृत्तात्मकता का परित्याग करके बंगला एवं संस्कृत नाट्य शैलियों के समन्वय द्वारा, प्रसाद जी ने भारतीय वातावरण के अनुकूल जिस नवीन नाट्यशैली को जन्म दिया, उसके लिये हिन्दी संसार सदैव ऋणी रहेगा। चूँकि प्रसाद जी मूलतः कवि थे, अतः उनके नाटकों में दार्शनिक चिंतन एवं विवेचन, शिवत्व स्थापना तथा विश्वव्यापी करूण के चित्रण का प्रयास काव्यमयी भावुकता एवं काल्पनिकता की क्रोड़ में हुआ है। यद्यपि प्रसाद के नाटकों की वर्ण्य वस्तु भारत के गौरवपूर्ण अतीत से जिसका केन्द्र बिंदु बुद्ध की करूण है, से ली गयी है, तथापि वह अतीत की सीमाओं तक ही नहीं सीमित रही–युगीन विशमताओं के वातायन से प्रसाद जी ने उसे देखा और अतीत को वर्तमान बनाने की चेष्टा की उनका दृष्टिकोण– असत् पर सत् की विजय का उनके सभी नाटकों में दिखायी पड़ता है।***

कुंजीभूत शब्द– साहित्य, अभ्युदय, सूत्रपात, शिल्पविधान, पौराणीक इतिवृत्तात्मकता, परित्याग, संस्कृत नाट्य शैलियाँ।

विशाखः– इस ऐतिहासिक नाटक में नाटककार ने तत्कालीन धार्मिक शोषण और उसके विकृत रूप पर कटाक्ष किया है, जिसका आधार समाजवादी है। दृष्टव्य है–

'ईरावती– देव! हम नागों की सारी भू संपत्ति हरण करके इस क्षत्रिय राजा ने एक बौद्ध मठ में दान कर दिया है।

'विशाख– (स्वगत)– क्यों नहीं इसी को तो आजकल धर्म कहते हैं। किसी भी प्रकार से उपार्जित धन को धर्म में व्यय करने का अधिकार ही कहां है। ऐसों को धर्मात्मा कहे कि दुष्टात्मा। क्योंकि वह नहीं जानते कि दूसरों का गला काटकर कोई धर्मशाला, मठ या मन्दिर बना देने से ही उनका पाप नहीं धो जाता।'

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने विशाख के माध्यम से धर्म के अव्यावहारिक एवं असामाजिक रूपों की आलोकचना की है, क्योंकि धर्म के माध्यम से अर्थोपार्जन कर विलास करना समाज के श्रमिक वर्ग के प्रति अन्याय है। विशाख इसी समाजवादी तथ्य को काश्मीर–नरेश नरदेव के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहता है–

'कामीर बिहार का औद्ध महंत जिसे राज्य की ओर से बहुत सी सपत्ति मिली है, प्रमादी हो गया है। दीन–दुखियों की कुछ नहीं सुनता–मोटे निठल्लों को एकत्र करके बिहार में बिहार कर रहा है। एक दरिद्र नाग की कन्या को अकारण पकड़कर अपने मठ में बंद कर रखा है। उसका वृद्ध पिता दुखी होकर द्वार–द्वार विलाप कर रहा है।'

धार्मिक कृत्यों की ओट में आर्थिक शोशण एवं अनैतिक व्यापार असामाजिक वृत्ति है। जिसके उन्मूलन का प्रयास विशाख ने किया है। स्पष्ट है कि नाटक समाजवादी तत्वों से प्रभावित होने के कारण युग का नेतृत्व करता है।

ध्रुवस्वामिनी– 'ध्रुवस्वामिनी' का विवाह गुप्तवंशीय 'रामगुप्त' से हुआ था। विवाह के पूर्व उसके सम्बन्ध की वार्ता शकराज से हुई थी, परन्तु कारणवश शकराज से उसका विवाह नहीं हुआ। शकराज ने ध्रुवस्वामिनी को हस्तगत करने के लिए गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी अप्रसन्न थी जिसका कारण था उसकी कायरता एवं पाशविक वृत्ति। वह 'चन्द्रगुप्त' से प्रेम करने लगी थी। राज्य की रक्षा के लिये रामगुप्त ने शकराज के पास ध्रुवस्वामिनी को भेजा और चंदगुप्त की चातुरी से शकराज का बध हुआ और अन्त में रामगुप्त का भी।

इस नाटक में नाटककार ने बुर्जुआ वर्गीय नारी–शोषण का विरोध कर उन्हें स्वाधीन रखने का प्रस्ताव समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। ध्रुवस्वामिनी ने नारी मात्र को संपत्ति समझी जाने वाली वृत्ति का विरोध करते हुए रामगुप्त से कहा–

'ध्रुवस्वामिनी– मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, यह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।'

ध्रुवस्वामिनी ने पुरुष–शोषण का विरोध करते हुए उसके पुरुशत्व को चुनौती दी, परंतु शक्तिहीन होने के कारण अपने नारीत्व की रक्षा संभव न समझ उसने आत्महत्या करने का निर्णय किया। उसी समय चंद्रगुप्त ने पहुँचकर उसे आश्वासन देते हुए कहा– **'देवि, जीवन विश्व की संपत्ति है।'**

चंद्रगुप्त का यह कथन समाजवादी तथ्यों पर आधारित है। समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति समाज की इकाई होता है। उसे यह कदापि अधिकार नहीं होता कि वह अपने स्वार्थ के लिए सामाजिक निधि का अपहरण अथवा नाश करें। अपने धर्म

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

अथवा विचारों एवं व्यक्तिगत आदर्शो की रक्षा सामाजिक नहीं, वैयक्तिक प्रश्न है, जिसके लिए संघर्श किया जा सकता है। आत्महत्या नहीं।

सामंतवादी शोषणमूलक वैवाहिक पद्धति की आलोचना, नारी–पुरुष के प्रकृत संबंध विवाह के मूल रूप–आत्मिक संबंध एवं सामाजिक समझौते पर भी नाटककार ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जो वास्तविक रूप में समाजवादी आदर्शो से प्रभावित है–

मंदाकिनी आर्य! आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म बंधन में बांधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार–कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब मॉग सकें?क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं?

'पुरोहित–नहीं, स्त्री पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार–रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।'

'ध्रुवस्वामिनी–खेल हो या न हो, किंतु एक क्लीव पति के द्वारा परित्यक्ता नारी का मृत्यु–मुख में जाना ही मंगल है। उसे स्वस्त्ययन और शांति की आवश्यकता नही।'

'पुरोहित–यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? विश्वास नहीं होता। यदि ये बातें सत्य हैं, तब तो मुझे फिर से एक बार धर्म–शास्त्र को देखना पड़ेगा।'

उपर्युक्त प्रसंग में नाटककार ने परंपरागत विवाह पद्धति को परिवर्तित करने का आग्रह किया है, क्योंकि उसमें नारी की सम्मति का अस्तित्व ही नहीं होता। विवाह एक सामाजिक समझौता और सामाजिक धर्म है, जिसकी रक्षा के लिए पक्षों की सम्मति आवश्यक है अन्यथा वह शोषण का माध्यम हो जायेगा। 'पुरोहित' के अंतिम शब्दों से नाटककार का तात्पर्य है कि भारतीय संस्कृति की विवाह संस्था अपने मूल रूप में शोषक नहीं, समाज के आदर्शो की पोषक है, परंतु शासन तंत्र पुरुष वर्ग के हाथों में आ जाने से उनकी स्वार्थी उच्छलक्षता, निरंकुश अधिकार लिप्सा ने उसके स्वरूप को विकृत कर दिया है। अतएवं इस आदर्श को प्रतिस्थापना के लिए शास्त्रों में उद्घृत नियमों को पुनः मस्तिश्कथ करने तथा युगानुकूल संशोधन एवं परिवर्धन करने की आवश्यकता है, जिससे उभयपक्ष अपने अधिकारों का उचित प्रयोग कर सामाजिक धर्म एवं उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सके।

अंत में नाटककार ने रामगुप्त और ध्रुवस्वामिनी का संबंध विच्छेद कराया है, जिसका कारण है ध्रुवस्वामिनी का दाम्पत्य असहयोग तथा रामगुप्त का दाम्पत्य अनुत्तरदायित्व–

'पुरोहित–विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रांतिपूर्ण बंधन में बांध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म–विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते। परन्तु यह सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी, यह रामगुप्त मृतो नहीं, पर गौरव से नष्ट आचरण से पतित और कर्मो से राज किल्विशी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।'

पुरोहित का यह निर्णय पूर्णरूपेण समाजवादी आदर्शो पर आधारित है, जिसमें पति–पत्नी में कलह अथवा मनस–द्रोह होने पर संबंध–विच्छेद की व्यवस्था है। अनुपयुक्त अथवा अमेल दाम्पत्य सम्बन्ध शोशण का कारण होता है। विवाह के मूलादर्श से च्युत होने पर पुरोहित की यह व्यवस्था व्यवहारोचित है। संक्षेप में, नाटक की आत्मा–नारी के स्वत्वों की रक्षा का आग्रह–निस्संदेह रूप से समाजवादी है।

कामना– इस नाटक में प्रसाद जी ने मानवीय वृत्तियों के माध्यम से वर्तमान विश्व की विशम परिस्थितियों का चित्रण (समाज) की स्थापना का आग्रह किया है जो मानवता को चिरंजीवी रख सके, शोषणयुक्त करके जीवन को स्वर्गिक बना सके। विश्व'–जीवन की मूल समस्यायें हैं–नारी–पुरुष संबन्ध, विश्व संपत्ति पर अधिकार का निर्णय, जीविकोपार्जन एवं उत्कृष्ट जीवनयापन की सुविधाओं की उचित व्यवस्था। प्रस्तुत नाटक में इन सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना नाटककार का अभीष्ट रहा है जिसमें उसे सफलता मिली है।

'कामना' के माध्यम से प्रसाद जी ने स्त्री–पुरुष को समान स्वतन्त्रता देने का आदर्श प्रस्तुत किया है–

'विलास– क्यों प्रिये, तुम्हारे देश के लोग मुझसे प्रसन्न तो नहीं हैं ?क्या तुम–'

कामना– इसमें अप्रसन्न होने की तो कोई बात नहीं है। यह तो इस द्वीप का नियम है कि प्रत्येक स्त्री–पुरुष स्वतन्त्रता से जीवन–भर के लिये अपना साथी चुन लें।

इस स्थान पर नाटककार ने विवाह की बुर्जुआ मान्यताओं को खंडित कर उसे युगानुकूल नवीन रूप देने का प्रयास किया हैं कामना और विलास मानव समाज के दो वर्गो के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। कामना एक ऐसे देश की युवती है जहाँ

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

नारी को पुरुष के ही समक्ष माना जाता है और उसे अपना जीवन–सहचर चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु 'विलास' ऐसे देश का युवक है जहाँ नारी परतन्त्र है–पुरुश के हाथों की हृदय एवं मस्तिष्कहीन माँसपुत्तलिका है। यही कारण है कि वह 'कामना' के स्वछन्द व्यवहारों के प्रति आश्चर्य प्रकट करता है और अपने देश की बुर्जुआ वर्गीय शोषण वृत्ति के सदृश नारी को पुरुष की अधिकृता भी। 'कामना' नाटककार की आदर्श पात्रा है, जिसे समाज की जाग्रत नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

नाटककार अपने युग की पूँजीवादी नृशंसता एवं शोशण के प्रति भी जाग्रत रहा। उसने युगीन शोषण का विरोध 'विवेक' के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

'सोने का ढेर छल और प्रवन्चना से एकत्रित करके थोड़े से ऐश्वर्यशाली मनुष्य द्वीपभर को दास बनाये हुये हैं और, आशा में, कल स्वयं भी ऐश्वर्यवान होने की अभिलाशा में, बचे हुये सीधे सरल व्यक्ति भी पतित होते जा रहे हैं।

उपर्युक्त उद्धरण में नाटककार ने बुर्जुआवर्ग और साधनहीन वर्ग की विशम परिस्थितियों का चित्रण किया है। पूँजीपति अपनी पूँजी से समाज का शोषण कर अधिकाधिक संपत्तिशाली बनते जा रहे हैं और मध्यवित वर्ग भी अपनी दुरवस्था पर विजयी होने के लिये शोशक समाज–व्यवस्था के प्रति साधनहीनता के कारण विद्रोह नहीं करता, प्रस्तुत अपेक्षाकृत अधिक धन संचय के लिये अनैतिक साधनों का प्रयोग करता है, जिससे वह अपनी विकृति को स्वस्थ जीवन में परिवर्तित कर सके। परिणाम स्वरूप समाज में अव्यवस्था होती है और आपत्तिकाल में वह पतित होकर नष्ट होता है और बुर्जुआ वर्ग अधिक शक्तिशाली बन जाता है।

रानी के स्वरूप की व्याख्या कर नाटककार ने बुर्जुआवर्गीय सदस्यों की तृश्णा, अभिमान, महत्वाकांक्षा एवं विलासप्रियता पर व्यंग्य किया है कि वास्तव में इनका जीवन स्वप्नवत् एवं असन्तुष्ट है, उनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। उनका जीवनादर्श है धनसंचय, मानवता नहीं।

रानी के स्वरूप की व्याख्या कर नाटककार ने बुर्जुआवर्गीय सदस्यों की तृश्णा, अभिमान, महत्वाकांक्षा वं विलासप्रियता पर व्यंग्य किया है कि वास्तव में इनका जीवन स्वप्नवत् एवं असन्तुष्ट है, उनका अपना कोई व्यक्तितत्व नहीं। उनका जीवनादर्श है धनसंचय, मानवता नहीं।

प्रसाद जी ने शोषक वर्ग के प्रपंचों, षडयन्त्रों एवं सामाजिक सुधार के मिस किये जाने वाले शोषण का रहस्योद्घाटन भी किया है, जो समाजवादी आदर्शो की आधारशिला है–

'क्रूर– पर यहाँ अधिक से अधिक सोने की आवश्यकता होगी। यहाँ व्यय की प्रचुरता नित्य अभाव का सृजन करेगी, और अन्य स्थानों की अच्छी वस्तु यहाँ एकत्र करने के लिये उद्योग–धन्धे निकालने होंगे।'

'दम्भ– स्वर्ण के आश्रय में ही संस्कृति और धर्म बढ़ सकते हैं। उपाय जैसे भी हो, उनसे सोना इकट्ठा करो, फिर उनका सदुपयोग करके हम प्रायश्चित कर लेगें।'

'प्रमदा– स्त्रियाँ पुरुषों की दासता में जकड़ गई हैं, क्योंकि उन्हें ही स्वर्ण की अधिक आवश्यकता है। आभूषण उन्हीं के लिए हैं। मैंने स्त्रियों की स्वतन्त्रता का मन्दिर खोल दिया है, यहाँ वे नवीन वेश–भूषा से अद्भुत लावण्य का सृजन करेंगी। पुरुष स्वयं अब उनसे अवगत होंगे। मैं वैवाहिक जीवन को घृणा की दृष्टि से देखती हूँ। उन्हें धर्म–भवनों की देवदासी बनाऊँगी।

'दुर्वृत– इसमें मनुष्यों के एकत्र रहने में सुव्यवस्था की आवश्यकता है। इसलिये इस धर्म–भवन से समय–समय पर व्यवस्था में निकालूँगा। वे अधिकार उत्पन्न करेंगी और जब उनमें विवाद उत्पन्न होगा, तो हम लोगों का लाभ ही लाभ होगा। नियम न रखने से विश्वश्रृंखला जो उत्पन्न होगी।'

'क्रूर– प्रमदा के प्रचार से विलास के परिणाम–स्वरूप रोग भी उत्पन्न होंगे। इधर अधिकारों को लेकर झगड़े भी होगें, मारपीट होगी तो फिर मैं औशधि और शास्त्र–चिकित्सा के द्वारा अधिक–से–अधिक सोना ले सकूंगा।

उपर्युक्त उद्धरण से पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी शोषण–नीति का स्पष्ट आभास हो जाता है जो तत्कालीन समाज की मूल वृत्ति है। इसी शोषण का उन्मूलन कर एक आदर्श समाजवादी समाज की स्थापना नाटककार का मूलोउद्देश्य है, जिसका चित्रण नाटक के अन्त में किया गया है।

'विवेक– इस विराट विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता, पिता और पुत्र, ईश्वर और सृष्टि, सबको एक में मिलाकर खेलने की सुखद क्रीड़ा भूल जाती है, होने लगता है विशमता का विशमय द्वन्द्व। तब सिवा हाहाकार और रुदन के क्या फैलेगा? हँसने का काम हम भूल गये। पशुता का आतंक हो गया। मनुश्यता की रक्षा के लिये पाशवी वृत्तियों का दमन करने के लिये राज्य की अवतारण को गयी, परन्तु उसकी आड़ में दुर्दमनीय नवीन अपराधों की सृष्टि हुई। इसका उद्देश्य तब सफल होगा,

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

जब वह अपना दायित्व कम करेगी—जनता को, व्यक्ति को आत्मसंयम और आत्मशासन सिखाकर विश्राम लेगी। जब अपराधों की मात्रा घटेगी और क्रमशः समूल नष्ट होगी, तब संघर्शमय शासन स्वयं तिरोहित होगा। आत्मप्रचारकी। उस दिन की प्रतीक्षा—में कठोर तपस्या करनी होगी, जिस दिन ईश्वर और मनुश्य राजा और प्रजा, शासित और शासकों का भेद विलीन होकर विराट विश्व, जाति और देश के वर्णो से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन—क्रीड़ा का अभिनय करेगा।

स्पष्ट है, कि नाटककार एक द्वन्द्वहीन, संघर्शहीन, वर्गहीन एवं शोषणहीन समाज की स्थापना का आग्रही है, जिसमें मानवता को त्राण मिल सके और मानव स्वतन्त्रतापूर्वक सुखी जीवन—यापन कर सके।

जनमेजयय का नाग—यज्ञ— यह नाटक महाराज परीक्षित के पुत्र जनमेजय के राज्यकाल से सम्बन्धित है जो एक पौराणिक कथा पर आधारित है जिसमें आर्यो (क्षत्रियों) और नागों के राजकीय संघर्ष की कथा है। नाटककार ने पौराणिक पृष्टिभूमि में भी अपने समाजवादी आदर्शो का चित्रण किया है।

श्रीकृष्ण के माध्यम से नाटककार ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का समर्थन किया है, जिसमें आध्यात्मिकता और ब्रह्मवाद की अपेक्षा भौतिकता को ही महत्व दिया गया है। विश्व—निर्माण के मूल रहस्य भौतिक तत्वों के विशेष समीकरण और उनके सूक्ष्म शाश्वत अस्तित्व का नाटककार ने समर्थन करते हुए वैज्ञानिक समाजवाद की साम्य भावना को सर्वोपरि जीवन—दर्शन घोषित किया है—

'श्रीकृश्ण— वयस्य, जिन पदार्थो की शक्ति अप्रकाशित रहती है, उन्हें लोग जड़ कहते हैं, तब देखो जिन्हें हम जड़ कहते हैं, वे जब किसी विशेष मात्रा में मिलते हैं, तब उनमें एक शक्ति उत्पन्न होती है, स्पंदन होता है, जिसे जड़ता नहीं कह सकते। वास्तव में सर्वत्र शुद्ध चेतन है, जड़ता कहाँ ? यह तो एक भ्रमात्मक कल्पना है। यदि तुम कहो कि इनका नाश होता है, और चेतन की सदैव स्फूर्ति रहती है, तो यह भी भ्रम है।

सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाय, किन्तु उसका नाश नहीं होता। गृह का रूप न रहेगा, तो ईंटे रहेंगी जिनके मिलने पर गृह बने थे। वह रूप परिवर्तित हुआ, तो मिट्टी हुई, 'राख हुई, परमाणु हुए। उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कहीं नहीं जाती और न उसका कचेतनमय स्वभाव उससे भिन्न होता है। वही एक अद्वैत' है। यह पूर्ण सत्य है कि जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है। अखिल विश्व एक सम्पूर्ण सत्य है। असत्य का भ्रम दूर करना होगा, मानवता की घोषणा करनी होगी, सबको अपनी समता में ले आना होगा।'

नाटककार ने 'त्रिविक्रम' के साध्यम से पुरोहिती—शोषण पर भी व्यंग्य किया है—

'त्रिविक्रम— यजमान की थोड़ी सी सामग्री इतस्ततः करके, कुछ जलाकर, कुछ जल में फेंककर, कुछ वितरण करके और बहुत सी अपनी कमर में रखकर एक संकल्प का जमा—खर्च गुना देना, और उसको विश्वास दिला देना कि अज्ञात प्रदेश में तुम्हारी सब वस्तुएं तुम्हें मिल जायंगी। अरे भाई, इससे अच्छा तो यह होता कि तुम बन्दर और बकरे को नचाने की विद्या सीखकर डमरू हाथ में लेकर घूमते।'

उपर्युक्त उद्धारण में नाटककार ने पुनर्जन्म, परलोक और धर्म के आडंबरों की मिथ्यावादिता पर कटाक्ष करते हुए पुरोहितों की धूर्तता पर आक्षेप किया है। सामाजिक एवं नैतिक प्रगति के लिए नाटककार ने नारी श्रृंगारप्रियता को निरर्थक बतलाते हुए, उसमें सरलता, सहृउदयता और सात्विकता को आवश्यक माना है। शीला के शब्दों में ..... वहन दामिनों, मेरी समझ में तो स्त्रियां विशेश श्रृगार का ढोंग करके अपनी स्वाभाविक—स्वतन्त्रता खो बैठती हैं।

वस्त्रों और आभूषणों की रक्षा करने और उन्हें सम्भालने में उनको जो कार्य करने पड़ते हैं, वे ही पुरूषों के लिए विभ्रम से हो जाते हैं। चलने में उन्हें आभूषणों के कारण संभालकर पैर रखना, कपड़ों को बचाने के लिये समेटकर उठाते हटाते, खींचते हुए चलना—यह सब पुरुष' की दृष्टि को कलुशित करता ही है हमारे लिए भी और बन्धन हो जाता है। खुले हृदय से, स्वछंदता से, उठना—बैठना और बोलना—चालना भी दुश्कर हो जाता है। मेरी सम्मत्ति तो यह है कि सरलता, हृदय की पवित्रता, स्वच्छता और अपनी प्रसन्नता के लिए उतना ही स्त्री अनसुलभ सहज श्रृंगार पर्याप्त है जो स्वतंत्रता में बाधा न डालता हो, जो दूसरे का मनोरंजन करने के लिए न हो। कुटिलों का लक्ष्य बनने के लिए कठपुतली की तरह सजना व्यर्थ ही नहीं किंतु पाप भी है'।

नाटककार ने साधारण से श्रृंगार प्रसाधन के प्रसंग को लेकर नारी—जीवन की प्रताड़ित अवस्था के मूल कारण तक की व्यवस्था कर दी है। इन्हीं प्रसाधनों द्वारा नारी, पुरुश की काम—पिपासा का भयानक शिकार बनती है क्योंकि आभूशणलिप्सा के कारण वह जीवन के अन्य महत् कार्यो एवं अधिकारों को विस्मृत कर अपने में खोई रहती है, जिससे अनायास ही उसकी स्वतंत्रता का अपहरण हो जाता है। तात्पर्य यह कि श्रृंगार प्रसाधन से भी महत्वपूर्ण कार्य नारी—जीवन में हैं, जिनकी ओर उसे अग्रसर होने में जीवन की सार्थकता है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विशाख– जयशंकर प्रसाद।
2. ध्रुवस्वामिनी– जयशंकर प्रसाद।
3. कामना– जयशंकर प्रसाद।
4. जनमेजय का नाग–यज्ञ– जयशंकर प्रसाद।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
6. हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव– डा0 शंकरलाल जायसवाल– सरस्वती प्रकाशन मन्दिर नया बैरहना, इलाहाबाद।
7. हिन्दी साहित्य की भूमिका– हजारी प्रसाद द्विवेदी।

*****